'वेद-विज्ञान में आदर्श जीवन'

ब्राह्मण नीति तन्त्र को, क्षत्रिय राजतन्त्र को, वैश्य गण तन्त्र को और शूद्र प्रजा तन्त्र को सम्भालते हैं। नीति राजनीति की आत्मा है राजतन्त्र बुद्धि है गणतन्त्र मन है प्रजा तन्त्र शरीर है। ईश्वर से जुड़ी नीति धर्मनीति है विश्व से जुड़ी नीति राजनीति है आदि

प्रस्तुत लेख सामाजिक व्यवस्था के निदर्शन की ओर इंगित करता है.....

वैदिक जीवन दृष्टि एक ऐसी प्रक्रिया है जो भोग को योग में परिणत कर देती है। भोग का निषेध करके योग की साधना शरीर और मन की उपेक्षा है। वस्तु स्थिति यह है कि संस्कृति सभ्यता का महिमा मण्डल होने के नाते उतनी ही निखरती है, जितनी सभ्यता पुष्ट होती है। द्वैत वादी दृष्टि न केवल अस्तित्व को खण्डित करती है प्रत्युत अस्तित्व के बीच विरोध भी पैदा कर देती है। वेद के द्वारा प्रतिपादित गृहस्थ आश्रम में भोग और योग का समन्वय प्रत्यक्ष होता है। इसलिये मनु ने गृहस्थ आश्रम को सब आश्रमों का मूल माना है। यज्ञ की कोई प्रक्रिया पत्नी के बिना पूरी नहीं होती। मन और शरीर का श्रम बुद्धि का परिश्रम और आत्मा का आश्रय मिलकर ही जीवन की परिपूर्णता है। पाणिनि के अनुसार पत्नी शब्द पति शब्द के स्त्रीलिंग में यज्ञ के सन्दर्भ में बनता हैं सूत्र है 'पत्युर्नो' यज्ञ संयोगे।, यज्ञ सृष्टि की प्रक्रिया है गृहस्थ भी सर्जन की प्रक्रिया है। दाम्पत्य जीवन के बिना व्यक्ति अधूरा है आकाश को 48 अंशों में बॉटा जाता है 24 अंश सौर है, 24 अंश चान्द्र है। सौर अंश पति है चॉन्द्र अंश पत्नी है। दोनों का

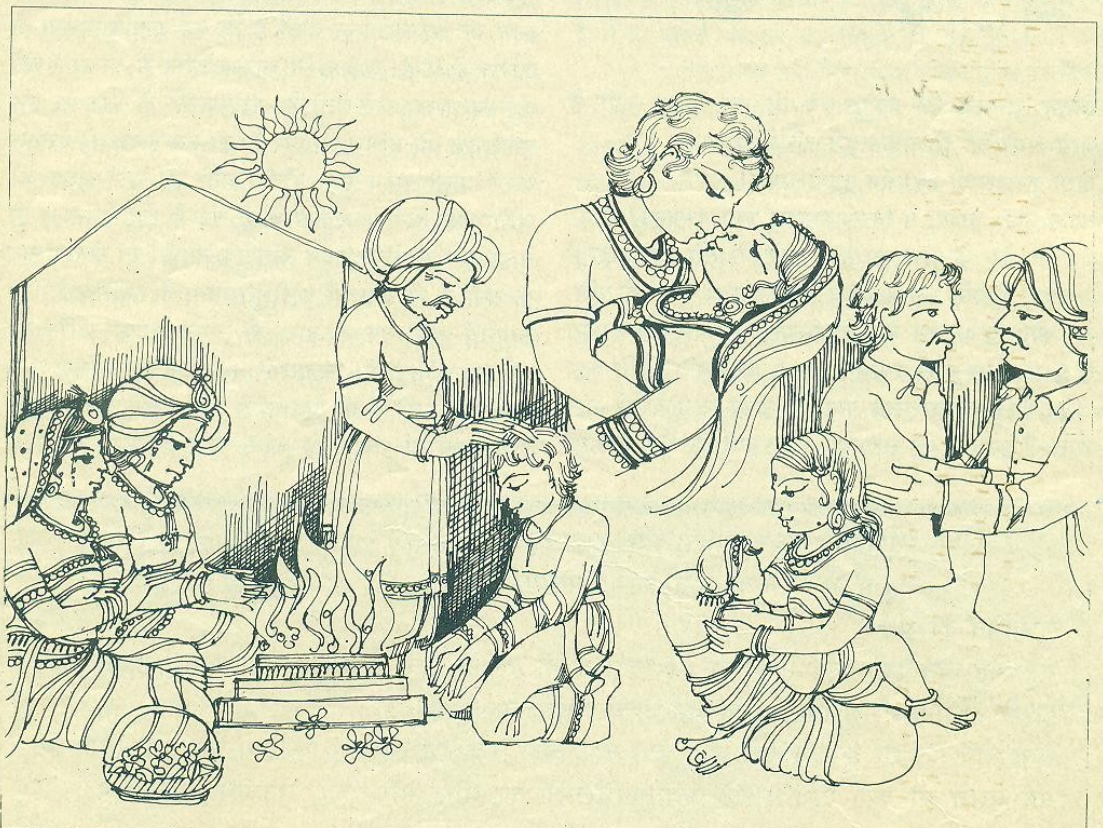

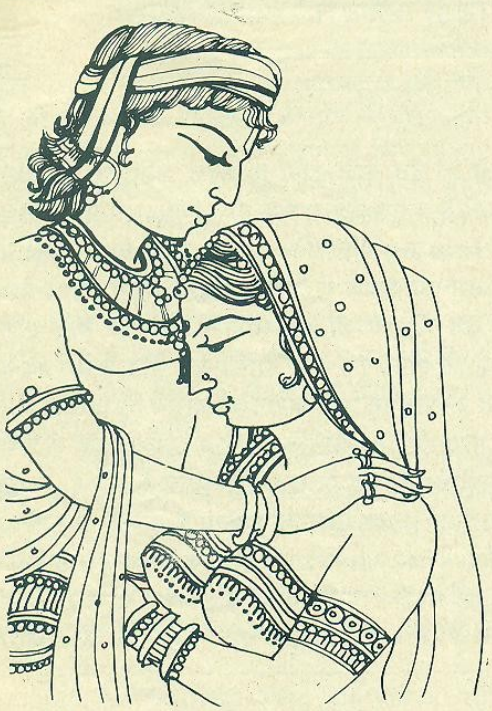

मिलन दाम्पत्य है। वस्तुत: ये दो का मिलन नहीं है आधे आधे को मिलाकर पूर्ण की निष्पत्ति है-

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषो भवत्।
अर्धेन नारी, तस्यां स विराजमसृजत् प्रभु:।।-मनु1/32

प्रेम के पांच रूप हैं। 1.बड़ों के प्रति प्रेम श्रद्धा है 2. छोटों के प्रति प्रेम वात्सल्य है 3. बराबर वालों के प्रति, प्रेम स्नेह है 4. जड़ के प्रति किया जाने वाला प्रेम काम है 5. उपर्युक्त चारों प्रकार के भावों का समन्वय रति कहा जाता है। इनमें वात्सल्य क्यों कि ऊपर से नीचे की ओर आता है इसलिये वह सहज है, श्रद्धा क्यों कि नीचे से ऊपर की ओर जाती है इसलिये वह प्रयत्न साध्य है। रति यदि उपास्य के प्रति हो तो भक्ति कहलाती है। दाम्पत्य क्षेत्र में यही रति श्रृंगार कहलाती है।

ध्यान देने की बात है कि रति में प्रेम के समस्त रूप समाहित हैं। दाम्पत्य के इस सर्व रूप को ध्यान में रखकर ही कालीदास ने पत्नी को गृहिणी, सचिव, सखा और शिष्या सब कुछ बताया है। दाम्पत्य की यह रति अपने उत्कृष्ट रूप में आत्म रति बन जाती है तो दाम्पत्य शारीरिक सम्बन्ध न रह कर आत्मिक सम्बन्ध हो जाता है। इसीलिये उपनिषदों ने आत्मानन्द का वर्णन रति की उपमा से किया है तथा 'प्रिययया स्त्रिया सम्परिष्वक्त:'। इस प्रकार गृहस्थ शरीर के एक छोर से प्रारम्भ करके आत्मा दूसरे छोर को छू लेता है। काम का यह उदात्त रूप मनोवैज्ञानिकों के उस विश्लेषण से आगे चला जाता है जो विश्लेषण केवल मन पर ही रुक जाता है एवं विजानन-आत्मरतिरात्मक्रीड़ आत्मविश्रुन् आत्मानन्द: स: स्वराट्-भवति।। छां. उप. ७/२५/२।।

सेक्स का संबन्ध हमारे मन से नहीं अपितु सूक्ष्म शरीर से है सूक्ष्म शरीर वासनाओं से बना है उसमें जब काम की तरंग उत्पन्न होती है तो वह अनादि वासना के कारण होती है। यही तरंग कारण शरीर में आकर इच्छा का रुप धारण कर लेती है। यदि शरीर के स्तर पर हम इस इच्छा को अभिव्यक्त कर दें, तो उस इच्छा को उत्पन्न करने वाली तरंग पुष्ट होती जाती है। उस इच्छा को अभिव्यक्त होने से रोकना बाह्य तप है इच्छा उत्पन्न ही न हो ऐसा परिवर्तन लाना आंतरिक तप है। इन दोनो प्रकार के तपों से ही ब्रह्मचर्य फलीभूत होता है इसलिये वेदों ने ब्रह्मचर्य और तप के द्वारा ही अमृतत्त्व की प्राप्ति का प्रतिपादन किया है। "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नन्। गृहस्थ के आदि में भी ब्रह्मचर्य है अन्त में भी ब्रह्मचर्य है।" प्रथम ब्रह्मचर्य शरीर को काम, भोग के योग्य बनाने के

लिये है क्यों कि समर्थ शरीर ही काम का पूर्ण भोग कर सकता है। और काम का पूर्ण भोग ही काम के पार ले जा सकता है। गृहस्थ के बाद आने वाला ब्रह्मचर्य काम के पार जाने की स्थिति है। इस प्रकार वैदिक दर्शन में काम पुरुषार्थ पर जो चिन्तन हुआ वह आधुनिक मनोविज्ञान से कहीं आगे है।

हमने ऊपर समता के सन्दर्भ में यह चर्चा की कि व्यवहार में समता का समर्थन तर्क विरुद्ध है प्रकृति में विषमता है। प्रकृति में समता का अर्थ होता है प्रलय दोषी और गुणी के प्रति समान व्यवहार करना सामाजिक प्रलय लाने के समान है।फ्राईड के संदर्भ में हमने इस ओर संकेत किया है कि संयम काम पुरुषार्थ की परिपूर्णता के लिये आवश्यक है। दमन बुरा है। यह कहकर स्वच्छन्दता का पोषण नहीं किया जाना चाहिये। वस्तुत वैदिक चिन्तन में प्रकृति के सभी पक्षों पर विचार हुआ है। मूल बात यह है कि डार्विन का यह सिद्धांत कि मनुष्य पशु का ही एक विकसित रूप है ठीक नहीं है। जीव के शरीर का विकास होता है जन्म जन्मान्तर में भिन्न-भिन्न योनियों में से गुजरते हुए हमारी इन्द्रियों का विकास होता है। मन और बुद्धि का विकास होता है। किन्तु इस विकास के क्रम में मनुष्य की योनि एक ऐसी योनि है जहाँ प्रकृति का अतिक्रमण करने की संभावना है इसलिये वेद पश्चिम में चलने वाले प्रकृति की ओर वापिस चलो के आन्दोलन का समर्थक नहीं है वेद का नारा है प्रकृति के आगे चलो।शरीर और मन से तथा बुद्धि से भी हम आत्मा के रूप में प्रकृति हैं इसलिये प्रकृति की उपेक्षा नहीं की जा सकती किन्तु हम आत्मा के रूप में प्रकृति नहीं है इसलिये हम प्रकृति के ऊपर रुक भी नहीं सकते। वेद का आदर्श ऋषि जीवन है ऋषि प्रकृति के रहस्यों को जानता है। किन्तु अपने स्वरूप को विस्मृत नहीं कर देता। उसे अपनी ज्ञान की सीमाएँ मालूम हैं जो सान्त है उसे जाना जा सकता है अनन्त को नहीं जाना जा सकता।

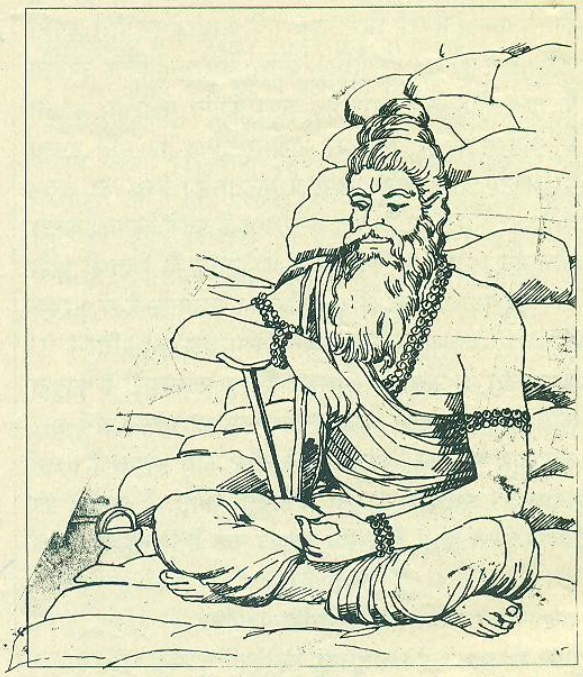

अनन्त शाश्वत धर्म का आधार है। सान्त युग धर्म का आधार है। जो अनन्त को आधार बनाकर सान्त का सेवन करते हैं वे ही शान्त के पार जा सकते है।

वर्ण व्यवस्था उपर्युक्त वैदिक जीवन दृष्टि पर टिकी हुई एक वैज्ञानिक व्यवस्था है इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। राजनीति के क्षेत्र में ब्राह्मण नीति तंत्र को, क्षत्रिय राजतंत्र को, वैश्य गणतन्त्र को और शूद्र प्रजातंत्र को सम्भालते हैं। नीति राजनीति की आत्मा है राजतंत्र बुद्धि है गणतन्त्र मन है प्रजातन्त्र शरीर है। ईश्वर से जुड़ी नीति धर्म नीति है। विश्व से जुड़ी नीति राजनीति है। समाज के क्षेत्र में ब्राह्मण आत्म निष्ठा द्वारा ज्ञानमय क्रान्ति करता है जिसे श्वेत क्रान्ति कहा जा सकता है। क्षत्रिय बुद्धि द्वारा अन्याय का प्रतिकार करते हुए न्याय की स्थापना करता है। इसे रक्त क्रान्ति कह सकते है। वैश्य आर्थिक अभ्युदय के द्वारा जो

क्रान्ति करता है उसे स्वर्ण के वर्ण के आधार पर पीत क्रान्ति कह सकते हैं। शूद्र औद्योगिक क्रान्ति करता है जिसे उपयोग के मूल्य लोहे के आधार पर कृष्ण क्रान्ति कहा जा सकता है। ब्राह्मण आत्मा के द्वारा साक्षात् पौरुष की मूर्ति बनता है। क्षत्रिय बुद्धि द्वारा पुरूषार्थ करता है। वैश्य का उत्तर अधिकार भाग्य पर है। शूद्र क्षमाशील है इनमें जिनका शरीर और मन आत्मा से निपतित है वे नैष्ठिक हैं. जिनकी बुद्धि और आत्मा पर मन और शरीर का साम्राज्य है वे भावुक हैं। प्रकृति का अतिक्रमण करने वाला ब्रह्म का प्रतिरूप है। जो प्रकृति के फलों में आसक्त है वह कामचारी है प्राकृत काल के वशीभूत हो जाता है। आचार का मूल है अर्थ और काम पर धर्म का नियंत्रण अर्थ और काम प्रत्यक्ष है। धर्म परोक्ष है। अधर्म से प्रारम्भ में उन्नति होती है शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है ये सब प्रत्यक्ष फल है किन्तु जो परोक्ष मूल है वह नष्ट हो जाता है।

अधर्मेणेधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्ना जयति समूलस्तु विनश्यति।।मनु 4/274

इसलिये 'परोक्षप्रिया वै देवाः' ऐसा कहा जाता है। हम प्रत्यक्ष को साधे पर परोक्ष को न भूलें स्थूल की चिकित्सा आयुर्वेद करता है सूक्ष्म शरीर की चिकित्सा धर्म शास्त्र करता है कारण शरीर की चिकित्सा वेदान्त करता है। इस प्रकार व्यक्त व्यक्ताव्यक्त और अव्यक्त तीनों की चिन्ता शास्त्र में है किन्तु जब हम व्यक्त के कारण अव्यक्त को भूल जाते हैं तो जीवन एकांगी हो जाता है।

सामान्यतः अब तक यह बात सत्य थी कि विज्ञान हमें प्रत्यक्ष का ही ज्ञान कराता था किन्तु ऐनस्टीन के सापेक्षतावाद के बाद और सूक्ष्म उपकरणों द्वारा परमाणु से भी नीचे के संसार को जान लेने के बाद आज विज्ञान और धर्म के बीच की विभाजक रेखा लगभग समाप्त हो गयी है क्योंकि जो कल तक परोक्ष का विषय था वह आज प्रत्यक्ष का विषय हो गया है। भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में एक बड़ी क्रान्ति यह हुई कि यह माना जाने लगा कि दृश्य के विश्लेषण में दृष्टा योगदान है। दृष्टा अर्थात् चेतना को जाने बिना दृश्य अर्थात जड़ को भी पूरी तरह से नहीं जाना जा सकता। इस खोज ने जड़ और चेतन के बीच दीवार गिरा दी इस घटना से वेद की दृष्टि के भौतिक विज्ञान बहुत निकट आ गया है और यदि आधुनिक भौतिक विज्ञान की खोजें विश्व के प्रति वैदिक दृष्टि का समर्थन कर रही हों तो यह अनुपयुक्त न होगा कि समाज विज्ञान के क्षेत्र में भी वेद की जीवन दृष्टि का अनुसरण किया जाय और संसार पिछले २० वर्षों से जिस वैकल्पिक व्यवस्था की खोज में है। सम्भव है कि वह खोज वैदिक जीवन दृष्टि के प्रकाश में आने से सफल हो जाय। इसी दृष्टि से हमने सर्वांगीण वैदिक जीवन दृष्टि का विवेचन किया।

● **भल्लूराम खीचर**
(जोधपुर)